

अध्याय – सात

अध्याय - सात

वैयक्तिक मनोदशा , जीवन-दृष्टि एवं समीक्ष्य कवि

7 : क :(i) परिवेश एवं व्यक्ति : -

परिवेश का प्रभाव विविध घटनाओं और संयोगों के माध्यम से व्यक्ति के मन पर पड़ता है। यह प्रभाव उसकी मनोदशा का निर्माण करता है। इस मनोदशा के अन्तर्गत व्यक्ति की प्रतिक्रियाएँ रूप ग्रहण करती हैं। किसी विशेष स्थिति में व्यक्ति का प्रसन्न होना, क्रोधित होना, आक्रोश भर जाना, विषाद अनुभव करना, निराश हो जाना आदि उसकी मनोदशा की पहचान कराते हैं। इन सबसे ही उसका वैयक्तिक जीवन भी बनता है। अर्थात् अपनी मनोदशा के प्रभाव में ही वह अपने जीवन का मूल्यांकन करता है। समकालीन परिवेश और उससे प्रभावित समकालीन व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं का प्रभाव कवि के मनोजगत पर पड़ा। कवि के मनोजगत पर समकालीन घटनाओं के जिन चित्रों की प्रतिच्छायाएँ पड़ी, उन प्रतिच्छायाओं का मूल्यांकन कर, शब्दों के द्वारा उनको रूप देकर कवि अपनी कविताओं में प्रस्तुत करते हैं। जहाँ सर्वेश्वर और श्रीबीरेन के काव्य में साठोत्तरी व्यक्ति की मनोदशा के चित्र मिलते हैं वहीं वैयक्तिक जीवन के चित्र भी विद्यमान हैं।

पिछले अध्यायों में किये गये समकालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक विवेचनों के आधार पर यह स्पष्ट हो गया है कि समकालीन व्यक्ति भूख, बेकारी, निरन्तर बढ़ती जनसंख्या, पीड़ा, घुटन, संत्रास, विषाद, वेदना, कुंठा आदि विसंगतियों एवं मनोविकारों के कारण उत्पन्न निरीह स्थितियों, शासकीय मनमानी, स्वार्थपरकता, अवसरवादिता, शोषणावृत्ति, झुठे आश्वासन, हत्या, लूट, आगजनी, आपाधापी, विवशता, परवशता आदि की जिन्दगी झेल रहा है। कुंठा, निराशा व आक्रोश उनके नश-नश में समाये हुए हैं। अतः इन मनोदशाओं के चित्र सर्वेश्वर और श्रीबीरेन की कविताओं में प्राप्त हैं।

7 : ख : सर्वेश्वर एवं श्रीबीरिन के काव्य में वैयक्तिक मनोदशा : -

रमेश ऋषिकल्प के मतानुसार , “ सर्वेश्वर जिस दुनिया में पैदा हुए उसमें आदमी काली हांडी सा अपने कंधों पर टंगा है । बेढंगी ऊबड़-खाबड़ लुटी हुई बंजर दुनिया है । यह दुनिया प्रश्नचिह्नों की बैसाखी और बांस की खपच्चियों पर टंगी हुई हैं जो छोटे बच्चों का पेट पाल नहीं सकती, भूखे जीव को दाना नहीं दे सकती।”¹ कवि इस जीवनाभुव को इस प्रकार प्रकट करते हैं:-

“ऐसा क्यों है कि
मुझे अपना ही सिर
जली काली हाँडी-सा
अपने कंधों पर टँगा महसूस होता है ,
और आँखें डरौने पर बनी आँखों-सी लगती हैं
जैसे वे मेरे देखने के लिए नहीं
दूसरों के देखने के लिए हैं ।
कभी-कभी ऐसा लगता है
कि मुझे मेरे शरीर से अलग कहीं
प्रतिष्ठित कर दिया गया है ,
मैं अपने ही तन से निर्वासित हूँ ।”²

जिन्दगी की विसंगति और व्यर्थता के कारण सर्वेश्वर को जिन्दगी उस फटे हुए कपड़े की तरह लगने लगती है , जो तार-तार हो गया है और जितनी बार उसे सीने की कोशिश करें , उतनी ही बार फटता जाता है । लेकिन मजबूरी यह है कि जिसे ओढ़ने से गर्मी का कोई एहसास नहीं है , उसे ओढ़कर ठंड को भुलाने का प्रयास करना पड़ता है :-

“कैसी विचित्र है जिन्दगी
जिसे मैं जीता हूँ ।
एक सड़ा कपड़ा जो फटता जाता है
ज्यूँ-ज्यूँ सीता हूँ ।
जब भी काढ़ने चलता हूँ

कोई सुन्दर फूल
 एक पैबन्द लगाता हूँ
 और इस तरह बनाता जाता हूँ
 एक लबादा , जिसे हर बार ओढ़ने पर
 धरता हूँ , फिर भी ओढ़ता जाता हूँ ।”³

जिन्दगी की विसंगतियों के बीच असमर्थता व विफलताओं से घेरे आम आदमी की उस
 मानसिक स्थिति को चित्रित करते हुए सर्वेश्वर के शब्द हैं :-

“मैं हँसता हूँ , गाता हूँ ,
 रोता हूँ , चीखता हूँ ,
 प्यार करता हूँ , गालियाँ देता हूँ ,
 लेकिन हर स्थिति में
 वैसे का वैसे ही हर जाता हूँ ,
 जैसे मैं मुर्दों के बीच हूँ -
 उन्हें ही उठा रहा हूँ , रख रहा हूँ ,
 उनसे ही लिपट रहा हूँ , लड़ रहा हूँ ,
 उन्हें ही बाँध रहा हूँ ,
 छोड़कर आगे बढ़ रहा हूँ

 अंत में वहीं पहुँच जाता हूँ
 जहाँ से चलना शुरू करता हूँ ।”⁴

राजनैतिक , सामाजिक , आर्थिक व धार्मिक भ्रष्टाचारों द्वारा निचोड़ कर छोड़े गये आम
 आदमी को अपना जीवन उस मृत कीड़े की तरह महसूस होने लगा है , जिसकी केवल ठठरी ही रह
 गयी है । सर्वेश्वर इस अुनभव को व्यक्त करते हुए लिखते हैं :-

“फिर वह हाथ-पैर को एक साथ जकड़ता है ;
मेरे भीतर कुछ कड़कड़ाकर टूटता है
में निष्प्राण हो जाता हूँ
कौन यात्रा अन्त तक बनी रहती है ;
इस तरह पुराने जाल में
चूसकर छोड़ दिये गये मृत कीड़े-सा
में रात-भर पड़ा रहता हूँ ।”⁵

असमर्थता व पंगुपन का शिकार हो व्यक्ति कभी अपने आप को खत्म करने की सोचता है और कभी उस व्यवस्था से जुझना चाहता है , जिससे वह संतुष्ट है । लेकिन वह पाता है कि भ्रष्ट व्यवस्था की जकड़न तेज होती जा रही है और उसी जकड़न में वह पिसता जा रहा है । अब सवाल उठता है , अपने अस्तित्व का । समकालीन व्यक्ति के इस अनिश्चित मानसिक द्धन्द को सर्वेश्वर ने बड़े स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है :-

“अब कुछ ठीक नहीं
में कब हँस पडूँ
कब चीखकर
अपना गला दबा लूँ
कब छुरा उठाकर
सामने वार कर बैठूँ
अब कुछ ठीक नहीं ।
मेरे चारों तरफ
कुएँ का यह घेरा
सँकरा होता होता
मेरे जिस्म को ही नहीं
मेरी आत्मा को छूने लगा है
अब कुचला जाना मेरी नियति बनता जा रहा है ।

.....

लेकिन अब किसी की
 कोई पहचान नहीं
 और इनसे घिरकर
 मैं अपनी पहचान भी
 खोता जा रहा हूँ ।
 अब कुछ ठीक नहीं
 मैं कब क्या हो जाऊँ ?”⁶

समकालीन परिस्थिति में आम आदमी का कोई मूल्य नहीं रह गया है । अपनी पहचान को बनाये रखने के संघर्ष में खुद को खुद से दूर होते देख रहा है और पा रहा है कि उसका अस्तित्व सवालियों के घेरे में है । इस कट्टु अनुभव को सर्वेश्वर इस तरह प्रस्तुत करते हैं :-

“मैं चलता हूँ
 लेकिन रास्ते पर मेरे चरण-चिह्न नहीं छूटते ,
 मैं कोई लीक कोई परम्परा नहीं छोड़ता ,
 एक सूखा हुआ पता हूँ
 हर क्षण धरती को स्पर्श करता
 फिर भी धरती के बन्धन से छूटा
 उड़ता हुआ चला जा रहा हूँ ।
 कभी-कभी लगता है
 मेरा अस्तित्व ही मेरे लिए चुनौती है ,
 मैं प्रश्नचिह्नों की वैशाखी लगाकर चल रहा हूँ ।
 वह क्या है
 जिसने मुझे पंगु कर दिया है ,
 जिसके कारण मैं स्वयं से डरता हूँ ?”⁷

अपनी स्वतंत्रता , अपनी पहचान व अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत आम आदमी की तड़प को व्यक्त करते हुए श्रीबीरेन लिखते हैं :-

“बीच शहर के
 कोलाहल भरे एक होटल के
 अन्धेरे कोने में बैठी
 रंग-रूप विहीन
 ईश्वर की एक अखाद्य मुर्गी ने
 इतनी बड़ी पृथ्वी में
 अपना एक स्थान रखना चाहा ;
 स्पष्ट रूप से
 इस पृथ्वी को देना चाहा अपना परिचय ।
 सोचती है :
 क्या मैं , मैं हूँ
 क्या मैं , मैं हूँ ?
 खाने-पीने की माँगों के
 एक-दूसरे के बातचीत के
 असमंजसपूर्ण कोलाहल के बीच
 ईश्वर की अखाद्य मुर्गी ने
 पूरी साँस भर के कूक मारी :-
 मैं तो मैं होना चाहती हूँ
 मैं तो मैं होना चाहती हूँ
 मैं जी नहीं रही हूँ
 मुझे जीने दो
 मुझे जीने दो ।
 मैं एक बार स्वतंत्र होकर जीना चाहती हूँ ।
 मैं स्वतंत्र नहीं हूँ
 मैं स्वतंत्र नहीं हूँ ;
 मैं स्वतंत्र होना चाहती हूँ
 मैं स्वतंत्र होना चाहती हूँ
 मैं स्वतंत्र होना चाहती हूँ ।”⁸

सर्वेश्वर की कविता में भी इस तरह की हताशा , निराशा , भय , त्रास आदि की अनुभूतियाँ दिखाई देती हैं । अपने ही प्रतिबिम्ब एवं अपनी ही आवाज़ से अपरिचित हुए आम आदमी की इस अनुभूति को उन्होंने इस प्रकार प्रकट किया है :-

“अब , जब हम
हर तरह से टूट चुके हैं ,
अपना ही प्रतिबिम्ब
हमें दिखाई नहीं देता ,
अपनी ही चीख
गैर की मालूम पड़ती है ,
एक आखिरी बयान
जीने और मरने का
हम दर्ज कराना चाहते हैं ,
वे छीनने आये हैं
हमसे हमारी भाषा ।”⁹

जीवन के कटु अनुभवों को झेलते-झेलते आम आदमी की सारी इच्छा-अनिच्छा , उत्साह व उमंग तथा कर्मरत होने की सारी भावनाएँ समाप्त हो चुकी हैं । उसे ऐसा लगने लगा है कि अब जीवन में कुछ शेष नहीं रह गया है , जिस पर आशा व विश्वास किया जा सके :-

“बिना किसी जवाब के
जीते-जीते मैं थक गया ,
मेरी प्रतीक्षा भी समाप्त हो गयी
अब मैं कुछ भी बचाना नहीं चाहता था
नहीं किसी चीज़ को गिरने से रोकना ।
अपने होने और अपने साथ-साथ
अपना एक संसार होने के भाव जब नहीं रहा
तब अन्धकार छँटने लगा

चारों ओर हाथ ही हाथ दिखायी देने लगे
 और वे आकृतियाँ भी
 जिन्हें मैं अन्धकार में टटोलता फिरता था ।
 जब मैं खुद अपना नहीं था
 तब सब मेरे अपने थे ,
 जिन्हें आँख खोलकर
 पहचानने की भी इच्छा
 मुझमें शेष नहीं थी ।”¹⁰

असमर्थताओं से घेरे आम आदमी के तनाव-ग्रस्त जीवन को दर्शाते हुए सर्वेश्वर अन्यत्र भी लिखते हैं :-

“हम सब
 आधे रास्तों की जिन्दगी जी रहे हैं
 हम सम्पूर्ण आवेगों के साथ
 न तो घृणा कर पाते हैं
 न प्यार ,
 न तो क्रोध कर पाते हैं
 न क्षमा :,
 अधूरी कामनाएँ ,
 अधूरी इच्छाएँ ,
 अधूरे सपने ,
 अधूरी बातें ,
 सब कुछ अपने में छिपाए
 अधूरे रास्तों पर घूमते हैं ;
 हम जीवन को सम्पूर्ण जीने से
 डरते हैं , कतराते हैं ,
 अधूरी दृष्टि ,

अधूरे विचार ,
 अधूरे सम्बन्धों को
 अपनाते हैं ,
 और उन्हें जो पूर्णता की खोज में
 लावारिस घूमते मिल जाते हैं
 आधे रास्ते से लौटा देते हैं ।”¹¹

श्रीबीरेन का भी एक सपना था , जीवन को अपने ढंग से जीने का , लेकिन समकालीन परिवेश उसे ऐसा नहीं करने देता । उसके सारे सपने एवं उत्साह को दबोच लिया जाता है और वह यथार्थ की जमीन पर गिरकर असमर्थता की पीड़ा सहने को मजबूर हो जाता है । उसे अपने ही जीवन को अपनी इच्छानुसार न जी सकने का उत्पीड़न सहना पड़ रहा है :-

“गर्व करता था मैं एक जमाने में
 रखूँगा जीवन को अपने अधीन ।
 घमण्ड से भर कर
 उठाता था अपना सिर -
 ‘कहते हैं इसी को पुरुषत्व
 काम नहीं कोई मुश्किल
 जीत मेरी हुई ।’
 घमण्ड के साथ
 मैंने किया था विश्वास
 चला रहा हूँ जीवन को मैं
 जैसे घोड़ा चलाया जाता हो पीठ पर चढ़कर ।
 लेकिन अगले क्षण
 दबोच लेता है जीवन मुझे ;
 गिर जाता हूँ मैं जमीन पर
 एकदम
 चलाने लगता है जीवन मुझको चढ़कर

चित गिरे हुए मुझ पर ।
 उसके बाद
 हुआ शुरू जीवन का
 छूटना नियंत्रण से मेरे
 ऐसे ही धीरे-धीरे
 अब तो रख दिया गया है मुझे
 नियंत्रण में उसी को ;
 नहीं मिल पाई मुझे स्वतंत्रता
 जीवन से ;
 हो गया अनियंत्रित
 यह जीवन अब तो ।”¹²

धर्म ग्रंथों , उपनिषदों , पुराणों तथा अन्य कथाओं से आदर्शगुणों से युक्त मानव चरित्र के बारे में जैसा सुना जाता है , हकिकत में उसके सब कुछ उल्टा पा कर श्रीबीरेन का कवि हृदय आशंकित हो जाता है । वे अपने मन को झूठे आश्वासन देने की कोशिश करते हैं कि काश यह सब सपना होता ? :-

“जो हो रहा है घट , क्या सब कुछ हुआ परिवर्तित ?
 सुना था मैंने सुन्दरता , स्वच्छता , निर्मलता
 करती है सन्तुष्ट मनुष्य को ,
 करती है जागृत इच्छा देखने की
 करती है पैदा रहने की इच्छा पास अपने , करती है मोहित ।
 लेकिन पायी मैंने - ये सारे गन्दगी , बदबू ।
 लगता है जैसे कर र ही हैं मोहित मनुष्य को ,
 सड़न - गलन , बदबू
 गन्दगी के पास , जागृत होती है इच्छा रहने को यूँ ही
 लगा , हो रहा है आकर्षित मन ।

क्या , है यह स्वप्न ?
 स्वप्न होने दो इसे ,
 हे भगवान ।”¹³

आज व्यक्ति कई तनावों को एक साथ झेलता हुआ जीता है , बल्कि यह कहा जाय कि वह न तो जीता है और न मरता ही है । टूटन की यह क्रिया श्रीबीरेन की कविता में समकालीन अनुभव की पहचान बन कर उभरी है । तब वे जीवन के रहस्यों को ढूँढ़ते हुए उसको अनेक अर्थों में परिभाषित करने की कोशिश करते हैं :-

“कौन सा सच्चा जीवन है
 नहीं जानता मैं ;
 मर रहे हैं
 या
 जी रहे हैं जो कुछ यह हो रहा है ?
 कौन है जो मर रहा है
 कौन है जो जी रहा है ?
 क्या यही है जीवन ?
 सचमुच मरना क्या होता है ?
 सचमुच मरना संभव होता है मनुष्य का ?
 इन सब की आर में , और क्या होगा ?
 क्या उस पार मिल जाएगा कोई और
 इससे अधिक प्यारा
 इससे अधिक सच
 जो अभी-अभी मिल रहा है इसके अतिरिक्त ॥
 अग्नि , जल , वायु , भूमी , आकाश
 अगर ये सच नहीं है तो
 इसके सिवा कोई और जगह
 होगी कहाँ ?

जा सकेंगे क्या यहाँ से उस पार
वहाँ तक हम मनुष्य ?

धर्म की बातें भी सुन लीं
पढ़ लीं ग्रन्थों व शास्त्रों में बताई गई बातें भी
मुनि-ऋषियों द्वारा दिखाया गया जीवन भी
देख लिया ;

लेकिन
नहीं रह सकता असंदिग्ध
पीठ और मुँह में
क्यों होगा इतना बड़ा अन्तर ?

क्या हो जाएँ हम संतुष्ट
रुक जाएँ यहीं यह यात्रा ?

किन्तु
मुझे नहीं रुकना है चलना ;
चलना पड़ेगा
चलना शुरू कर देने के कारण
मेरी यह लम्बी यात्रा
सूरज डूबने से पहले !
सूरज डूब गया तो
सब कुछ अन्धकारमय हो जाएगा
कुछ भी दिखाई नहीं देगा ॥”¹⁴

श्रीबीरेन मानव जीवन के वास्तविक अर्थ व स्वरूप को पहचानने के लिए जीवन को
अन्दर और बाहर दोनों तरफ टटोल कर देखना चाहते हैं । उनकी गवेषणात्मक दृष्टि जीवन के
प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप के रहस्य को खोलने के लिए प्रयत्नशील है :-

“जीवन क्या है ?

जीवन यही है , जो हो रहा है

जो दिखाई दे रहा है ,

जो सुनाई पड़ रहा है ,

जो कहा जा रहा है ।

तब तो ,

क्या हो रहा है ?

क्या दिखाई दे रहा है ?

क्या सुनाई पड़ रहा है ?

क्या कहा जा रहा है ?

जो घटित हो रहा है इस के पार

कोई और भी है क्या ?

उच्चरित शब्द ,

क्या बस यही शब्द है ?

इस उच्चरित शब्द के पार

है कोई और शब्द ?

बस इतना ही है , जो प्रत्यक्ष है ?

इस प्रत्यक्ष से दूर

है कोई और रूप इस प्रत्यक्ष का ?

सत्य और सच्चाई को यहाँ

चुक जाना पड़ेगा क्या ?

यह जीवन

घट रहे जीवन के पार जाकर

एक और सच

एक और सत्य में न सामिल हो सकें

तो वह नहीं है जीवन ।”¹⁵

जीवन के रहस्य को ढूँढने की कोशिश जारी करते हुए वे और लिखते हैं :-

“जो तुम कहते हो अन्तस्-अन्तस्
 यह नहीं , यह नहीं
 जो ढूँढ़ रहे हो इधर-उधर
 मैं नहीं हूँ क्या
 तुम्हारे सामने खड़ा
 तुम्हारी आँखों से देखा हुआ मैं
 तुम्हारे अनुभवित मैं ?
 ध्यान से देखो , बहुत ध्यान से
 मेरे इस रूप में
 तुम्हारा वह अन्तस्थ रूप
 वह अन्तस्थ जीवन
 निहित है , मौजूद है ;
 कोई नहीं है अलग से अन्तस् नाम का
 कोई नहीं है अलग से बाह्य नाम का
 मत ढूँढ़ो और
 अन्तस्-अन्तस् कहकर
 नहीं है दूसरा कोई
 तुम्हारे अनुभवी मेरे अतिरिक्त
 जो हो रहा है यही है जीवन ।”¹⁶

जीवन का अर्थ ढूँढ़ते-ढूँढ़ते सर्वेश्वर भी पाते हैं कि समकालीन परिवेश इतना भ्रष्ट हो चूका है कि अब कहीं भी सत्य व सत्कर्मों की कोई जगह नहीं रह गयी है । दूसरों और समाज के भला चाहनेवालों को निठल्ला कहा जाता है । मनुष्य जितना अधिक कामयाब होता जाता है , उतना ही अधिक वह मनुष्यत्व से दूर होता जा रहा है । सर्वेश्वर चाहते हैं कि इस से पहले , इस नये मनुष्य द्वारा मानवता की हत्या हो जाये , वह जीवन को सार्थक बनाने के अपने सपने को मार दें :-

“अर्थ , अर्थ -

जिन्दगी को अर्थ देने के चक्कर में
वह व्यर्थ हो गया है ,
मन्दिरों में झाड़ू लगाते
और कीर्तन सभाओं की दरियाँ बिछाते-बिछाते
वह किसी भी काम के लिए असमर्थ हो गया है ।
हर अर्थों को वह कंधा दे आता है
हर एक के वह आँसू पोछ आता है
फिर भी निठल्ला कहता है ।

अर्थ , अर्थ -

अब कहीं किसी चीज का कोई अर्थ नहीं
न ही किसी को अर्थ की तलाश है
दुनिया बदहवास है ।
जो दुख से नहीं ऊबा
वह सुख से ऊबा हुआ है
हर पहाड़ चुल्लू भर पानी में डूबा हुआ है
इमारतें जितनी ऊँची होती जा रही है ।
दिलों का आकार उतना ही छोटा ,
न कुछ खरा है न खोटा ।
लेकिन उसे यह कुछ भी नहीं है स्वीकार
अपना तौर-तरीका वह कहीं भी
बदलने को नहीं है तैयार ।
इसके पहले कि वह
अपनी इस लाइली दुनिया में
कुत्तों की मौत मारा जाये
में उसकी हत्या करूँगा ।”¹⁷

फिर जीवन के दुर्बल क्षणों को कवि सर्वेश्वर आत्म-शक्ति से जीतकर आत्मजयी बनना चाहते हैं। कड़े जीवन-संघर्ष में शक्ति अर्जित करने की प्रार्थना इसी आत्मा की पुकार है :-

“ सुनो , मैं भी पराजित हूँ ,
 सुनो , मैं भी बहुत भटकी हूँ ,
 सुनो , मेरा भी नहीं कोई ,
 सुनो , मैं भी कहीं अटकी हूँ ,
 पर न जाने क्यों
 पराजय ने मुझे शीतल किया ,
 और हर भटकाव ने गति दी ;
 नहीं कोई था
 इसी से सब हो गये मेरे ,
 मैं स्वयं को बाँटती ही फिरी
 किसी ने मुझको नहीं यति दी ।’
 लगा , मुझे उठाकर कोई खड़ा कर गया ,
 और मेरे दर्द को मुझसे बड़ा कर गया ।
 आज पहली बार ।”¹⁸

वे नहीं चाहते कि इस आत्मशक्ति को लौटाने के लिए ईश्वर के सामने अपनी असमर्थता व मजबूरी को लेकर गिरगिराये :-

“नहीं नहीं प्रभु तुमसे
 शक्ति नहीं माँगूँगा ।
 अर्जित करूँगा उसे मरकर बिखरकर
 आज नहीं कल सही आऊँगा उबरकर
 कुचल भी गया तो लज्जा किस बात की
 रोऊँगा पहाड़ गिरता
 शरण नहीं भागूँगा
 नहीं नहीं प्रभु तुमसे
 शक्ति नहीं माँगूँगा ।”¹⁹

खोई हुई आशा और खोए हुए उत्साह को फिर से जोड़ते हुए सर्वेश्वर लिखते हैं :-

“पहाड़ों को मेरे ऊपर गिरने दो ,
नदियों को मुझे बहा ले जाने दो,
सागर को किनारे पर
मुझे बार-बार पटकने दो ,
मैं अपनी शक्ति की परीक्षा
करना चाहता हूँ ।

क्योंकि यह अन्तः

तुम्हारे प्यार की शक्ति है ।

.....

मृत्यु को आने दो

अंतिम साँस तक तुम मेरे पास हो ।

जब पहाड़ मेरे ऊपर गिरेंगे

मैं बादलों की बाँहों में कसे रहूँगा ,

जब नदियाँ मुझ पर फैल जायेंगी

मैं धूप और चाँदनी को चूमूँगा ,

जब सागर मुझे

बार-बार तह पर पटकेगा

मैं याद करूँगा

यह जो अँधेरा आँखों के सामने छा रहा है

कितना तरल है ।

शराब से भीगे

तुम्हारे होठों की तरह

वह मुझ पर झुका होगा

हर क्षण लुप्त होती मेरी चेतना को

स्पंदित करता ।

अँधेरे में संघर्षरत लहरें ही

नहीं चमकती
निराशा से लड़ता आदमी भी
रोशनी देता है ।

.....
तुम्हारे प्यार की ही रोशनी है -
यानी
आकांक्षा और चुनौती के बीच
आत्मा में एक संगीत की तलाश
एक प्रकाश स्तम्भ का अहसास ।
मैं उसे अपने बाद भी
जीवित देखना चाहता हूँ ।²⁰

अपने अनुभव से प्राप्त दृढ़ निश्चय की ओर संकेत करते हुए सर्वेश्वर अस्तित्व की
सार्थकता और स्वयं को पहचानने का दर्शन भी देते हैं :-

“मैं नहीं चाहता कि मुझे
झाड़-पोंछकर दूकान पर सजाया जाय ,
दिन भर मोल-तोल के बाद
फिर पोटियों में रख दिया जाय ,
और एक खरीददार से
दूसरे खरीददार की प्रतीक्षा में
यह जीवन अर्थहीन हो जाय ।”²¹

यह ‘प्यार’ जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य के साथ चलने वाला एक ऐसा मनोभाव है,
जिसका रूप हमेशा जीवन की परिस्थिति के अनुसार कभी प्रकट होता है , तो कभी ओझल । ऐसा
माना जाता है कि रचना कर्म के पुर्वाद्ध में सर्वेश्वर एक भावुक और रोमानी व्यक्ति थे , लेकिन
आगे चल कर उन्हें समकालीन यथार्थवादी कवि बनने में देर नहीं लगी । सर्वेश्वर के इस
परिवर्तित व्यक्तित्व के कारण उनकी समकालीन परिस्थितियाँ हैं । कवि हमेशा इस ‘प्यार’ की

कोमलता को सँवारना चाहते थे , लेकिन जीवन के कटू अनुभवों ने उन्हें अपनी कविता को निराशा व हताशा के स्वरो से भरने को मजबूर किया है । सर्वेश्वर की समकालीन सामाजिक परिस्थिति की पुरी झलक इन पंक्तियों में साफ-साफ देखी जा सकती है :-

“मैं चाहता हूँ और भागता हूँ
 मैं भागता हूँ और पूछता हूँ :
 क्यों हम आदमी को
 आदमी की तरह नहीं देख पाते ?
 क्यों ये सब फाइलों में मरे पड़े हैं ?
 क्यों ये स्कूलों और कॉलेजों में ,
 क्यों ये बड़े-बड़े दफ्तरों ,
 ऊँची-ऊँची इमारतों में ,
 क्यों ये सत्ता की होड़ में ,
 क्यों ये एक-एक पाई की जोड़-तोड़ में ,
 क्यों ये थोथे सिद्धांतों के नीचे
 दब कर मर गये ,
 यदि बच रहे
 तो फूली लाश की तरह उबर गये ?
 क्यों हर हाथ टूटा है ?
 क्यों हर पैर कटा हुआ है ?
 क्यों हर चेहरा मोम का है ?
 क्यों हर दिमाग कूड़े से पटा हुआ है ?
 क्यों यहाँ कोई ज़िन्दा नहीं है -
 चीखता हुआ मैं नदी के किनारे
 उस नाव पर लौट आता हूँ
 जहाँ से
 ‘मौन रहो और प्रतीक्षा करो’ की

एक मंत्र की तरह
 जपता हुआ उतरा था ,
 और जहाँ अब वापस लौटा ले जाने के लिए
 उस सूखे चीमड़ कंकाल का
 सूखा झुर्रियों वाला हाथ भी नहीं रहा ,
 रोटी का टुकड़ा लिए बेजान पड़ा है ।
 मैं एक मक्खी की तरह
 खूद अपने ऊपर भिनभिने लगेता हूँ
 दिल्ली की इन सड़कों पर ।
 कुआनो नदी उतनी ही उथली है ,
 नाव उतनी ही छोटी कीचड़ में फँसी हुई ,
 मुर्दे उतने ही बेशुमार ,
 कहाँ हो , ओ क्रांति के सूत्रधार !”²²

हर संवेदनशील व्यक्ति समाज में घटित घटनाओं से बेखबर बन , उनकी नजर अन्दाज करके नहीं रह सकता , तो कवि का सहृदय समाज के हर सुख-दुख का सहभागिदार हुए बगैर कैसे रह सकता है । अतः सर्वेश्वर लिखते हैं :-

“कलम उठाते ही
 हमें मासूम बच्चे
 निरीह औरतें
 मेहनतकश भोले गरीब इंसान
 सब हमसाया नज़र आते हैं ,
 उनकी दहशत
 हमारी दहशत होती है
 उनकी मौत
 हमारी मौत
 चाहे वे शत्रु देश के ही क्यों न हों ।

हर बेकसूर आदमी की लाश
 हमारी कलम की रयाही में
 उतर आती है
 और हम सिर झुका
 उस अनंत प्रार्थना में डूब जाते हैं
 जो इंसान के लिए अक्ल की भीख माँगती है ।”²³

बाल्यावस्था से ही सर्वेश्वर ने बिछुड़े प्यार की तड़प को झेला है , चाहे वह प्यार पारिवारिक हो या कुछ और । इसका मूल कारण भी वही समकालीन परिस्थितियाँ हैं । अपने बिछूरे प्यार की तड़प को कवि इस तरह अभिव्यक्त करते हैं:-

“धूल की परत
 चाँद पर , आसमान पर -
 प्यार में जागा है विवेक ।
 और क्या देती
 लू के थपेड़ों से पिटी , जली धरती
 दर्द जिसकी टेक ।
 धूल में दबा यह रूप निरख
 धूल से आँज लीं मैंने आँखें ।
 होगी कीं चाँदनी
 होगा कहीं प्यार ,
 धूल केवल धूल
 मेरा संसार ।”²⁴

“मैंने कब कहा
 केई मेरे साथ चले
 चाहा जरूर ।
 अक्सर दरख्तों के लिए

जूते सिलवा लाया
 और उनके पास खड़ा रहा
 वे अपनी हरियाली
 अपने फल-फूल पर इतराते
 अपनी चिड़ियों में उलझे रहे
 मैं आगे बढ़ गया
 अपने पैरों को
 उनकी तरह
 जड़ों में नहीं बदल पाया ।
 यह जानते हुए भी
 कि आगे बढ़ना
 निरंतर कुछ खोते जाना
 और अकेले होते जाना है
 मैं यहाँ तक आ गया हूँ
 जहाँ दरख्तों की लम्बी छायाएँ
 मुझे घेरे हुए हैं
 किसी साथ के
 या डूबते सूरज के कारण
 मुझे
 और आगे जाना है
 कोई मेरे साथ चले
 मैंने कब कहा
 चाहा जरूर ।”²⁵

“इस पेड़ में
 कल जहाँ पत्तियाँ थीं
 आज वहाँ फूल है

जहाँ फूल थे
 वहाँ फल हैं
 जहाँ फल थे
 वहाँ संगीत के
 तमाम निर्झर झर रहे हैं
 उन निर्झरों में
 जहाँ शिलाखण्ड थे
 वहाँ चाँद-तारे हैं
 उन चाँद-तारों में
 जहाँ तुम थीं
 वहाँ आज मैं हूँ
 और मुझमें जहाँ अँधेरा था
 वहाँ अनन्त आलोक
 फैला हुआ है
 लेकिन उस आलोक में
 हर क्षण
 उन पत्तियों को ही मैं खोज रहा हूँ
 जहाँ से मैंने
 तुम्हें पाना शुरू किया था ।”²⁶

निराशा के इन क्षणों में भी वे इस विश्वास को जगाये रखना चाहते हैं कि उनके निरर्थक ,
 रसहीन व चोट खाये जीवन की बंजर भूमी पर प्यार पुनर्जीवित होगा और अपनी शीतल धारा से
 पीड़ित हृदय को प्लावित कर देगा :-

“घोड़े पर सवार
 दौड़ता आया मेरा प्यार
 और ओझल हो गया
 दूर पठारों के पार

.....
 तू स मैं हुआ
 जैसे तट पर खड़ा पेड़ होता है
 देखकर नीचे बहती जलधार
 घोड़े पर सवार
 फिर आयेगा मेरा प्यार । ”²⁷

भारत के पूर्वोत्तरी सिमा पर स्थित मणिपुर अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है । कवियों ने इस के प्राकृतिक सौन्दर्य का बहुत गुणगान किया है , लेकिन श्रीबीरिन की कविताओं में प्रकृति का वर्णन न के बराबर है । इसका कारण वे अपने सामाजिक परिवेश को मानते हैं । जिस तरह एक समय रोमानियत के प्रति आकृष्ट सर्वेश्वर को समकालीन परिस्थितियों ने यथार्थ जीवि बना दिया था, उसी तरह समकालीन परिवेश ने श्रीबीरिन को भी प्राकृतिक सौन्दर्य के मोह से दूर ले जाकर जीवन के ऊबर-खाबर रास्ते पर खड़ा कर दिया है । जीवन के इस अनुभव को प्रदर्शित करते हुए वे लिखते हैं :-

“आज का युग बहुत बुरा हो गया है
 बाजार के इस गन्दे नाले को
 मानने लगे हैं पवित्र गंगा ,
 इसमें डूबकी लगाने की बात करने लगे ।
 म्यूनिस्पैलिटी का कचरा
 इकट्ठा होता जाता है लगातार
 कौन शिकायत करता है ,
 विरोध में कौन जान देता है ?
 गंगा मान कर
 डूबकी लगाने लगे इस गन्दे नाले में ।
 गन्दगी में डूबकी लगाने के कारण

लगी गन्दगी को
 गंगाजल मानने लगे ;
 यह है आजकल की बीमारी ।
 बाजार के नाले को गंगा मानने जाने पर
 रो रहे हैं मेरे प्राण ।

रोते रोते
 लाचार हो
 गन्दगी के कुँए में
 डूबा हुआ पाया , अपने को ,
 ऐसे में कैसे गन्दगी
 नहीं लगी होगी शरीर में ?
 क्यों नहीं रोएँगे
 मेरे प्राण ?
 अब तो स्वयं ही
 गन्दगी का एक अंश
 हो गया हूँ शायद
 धीरे-धीरे
 अनजाने में मजबूर हो कर ।
 इसी को लेकर रो रहा हूँ और भी अधिक ।
 कब
 इस गन्दे कुँए से
 निकल सकेंगे ?
 इस गन्दे कुँए को
 नरक का कुँआ
 माना जायेगा ?”²⁸

यथार्थ जीवन के इस घृणित चेहरे ने श्रीबीरेन के मन में इतनी अधिक कटुता भरी है कि उनकी कविता तिरस्कार भरे शब्दों से भरी हैं , यहाँ तक कि वे समाज के इन थकेदारों को खुले शब्दों में गाली देने में भी नहीं हिचकते । समकालीन परिवेश में उन्हें आशा व विश्वास नाम की कोई चीज नज़र नहीं आती है । अतः वे लिखते हैं :-

“मानव से ज्यादा आशा नहीं करनी है
अन्त में मानव पर विश्वास करने वाला मैं
हो जाऊँगा अपराधी ।
प्रचलित ईश्वर की हत्या कर
भगवान की जगह लेने को
मानव एक समय घुसा था
सभी मन्दिरों में ।
ओह !
मानव
तुमने भी किया आत्माघात ।
अब कौन किसको करेगा विश्वास !”²⁹

अतः वे मनुष्य के संबंध में सोचना ही नहीं चाहते :-

“मानव के रूप में लगातार परिवर्तित होते देख
अब तो डर गया हूँ
सोचने से मानव कल्याण के बारे में ;
इसके बदले
पशुओं , पक्षियों
कीड़े मकोड़ों
फलों , फूलों के
बारे में सोचना अधिक उचित है ।”³⁰

श्रीबीरेन की कविताओं में अंतर्विरोध की भावना देखी जा सकती है । वे कभी ईश्वर शब्द को निर्धक मानते हैं तो कभी दुःखों के निराकरण के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हुए दिखते हैं। कभी जीवन को प्यार से बिल्कुल हटकर रहनेवाली दुनिया के रूप में दर्शाते हैं तो कभी सांसारिक रिस्तों की महत्ता को मानते हैं । कभी प्रत्यक्ष जीवन को ही जीवन का यथार्थ मानते हैं तो कभी जीवन के अर्थ की खोज में आत्मा-परात्मा की बातें करते हुए नजर आते हैं । उनका जीवनानुभव है :-

“मेरे कान
मेरी आँखें
मेरा मुँह
मेरे पैर
मेरे हाथ
सब के एकत्र होने पर
मेरा शरीर
कहा जाता है , बना है मिट्टी से थोड़े समय के लिए ,
इन सब को
करता हूँ बहुत प्यार ;
छोड़ना नहीं चाहता किसी को भी ।
मेरे लिए वे सब
सच हैं , यथार्थ हैं , तथ्य हैं
सत्य हैं , रियालिटी हैं ॥
मेरे पिता
मेरी माँ
मेरी पत्नी
मेरे बच्चे
मेरे भाई
मेरे दोस्त

में प्यार करता हूँ उन्हें
 बहुत प्यार करता हूँ
 जिन्हें माना जाता है माया ।
 मेरे लिए वे सब
 सच है , यथार्थ हैं , तथ्य हैं
 सत्य हैं , रियालिटी हैं ।
 नहीं सकूँगा मैं
 उनसे बिछुड़ना
 नहीं सकूँगा ॥
 लेकिन
 संतुष्ट नहीं हूँ मैं सिर्फ इससे ;
 पंचभूत का यह शरीर
 इससे परे
 जाने का इच्छुक हूँ मैं
 जाना ही होगा ॥³¹

अकेलेपन का एहसास समकालीन व्यक्ति का एक कटु यथार्थ बन गया है । इस अनुभव की स्पष्टतः झलक सर्वेश्वर और श्रीबीरेन की कविताओं में भी मिलती है । सर्वेश्वर लिखते हैं :-

“कसूँ मैं शिकायत किससे किस अधिकार से
 बँधा हुआ हूँ जब खूद अपनी हार से ।
 रंग , बदरंग हुआ
 अर्थ सब खो गया ,
 आकर्षण मरा
 अस्तित्व व्यर्थ हो गया ,
 चिपका हूँ गले पोस्टर-सा दीवार से ,
 कसूँ फिर शिकायत कैसे बहती बयार से !
 भीड़ में अकेला यदि खड़ा रहा ,

सब अपनी राह गये
 कोई मेरे लिए नहीं रुका
 किसी ने हाथ नहीं गहा ,
 अलग रहा जब मैं ही खुद धार से ,
 करूँ फिर शिकायत क्या कैसे किस ज्वार से !”³²

समकालीन परिवेश में हर कोई एक दूसरे से अनजान बन गया है । ऐसी स्थिति में सर्वेश्वर में मानते हैं कि अपना आत्मबल ही अपना सच्चा साथी है :-

“सारी जिंदगी
 मैं सिर छिपाने की जगह
 ढूँढता रहा ,
 और अंत में
 अपनी हथेलियों से
 बेहतर जगह दूसरी नहीं मिली ।”³³

‘मृत्यु’ मानव का जीवन-सत्य है। सभी सांसारिक प्राणियों का अंत मृत्यु है। अतः मृत्यु का सामना करना हर प्राणी के समक्ष एक बहुत बड़ी चुनौती है । मानव के लिए मृत्यु का एहसास होना ही बहुत बड़ी अनुभूति है। इस एहसास को सर्वेश्वर और श्रीबीरेन ने कविता में प्रस्तुत किया है। सर्वेश्वर ने दबे पाँव धीरे-धीरे नजदीक आ रही मृत्यु के पदचाप को इस प्रकार व्यक्त किया है:-

“धीरे-धीरे -
 मुझे सख्त नफ़रत है
 इस शब्द से ।
 धीरे-धीरे ही घुन लगता है
 अनाज मर जाता है ,
 धीरे-धीरे ही विश्वास खो जाता है
 संकल्प सो जाता है ।

.....

धीरे-धीरे
 अब मैं ईश्वर भी नहीं पाना चाहता ,
 धीरे-धीरे
 अब मैं स्वर्ग भी नहीं पाना चाहता ,
 धीरे-धीरे
 अब मुझे कुछ भी नहीं है स्वीकार
 चाहे वह घृणा हो चाहे प्यार ।

.....
 सिर्फ मौत होती है ,
 धीरे-धीरे कुछ नहीं आता
 सिर्फ मौत आती है ,
 धीरे-धीरे कुछ नहीं मिलता
 सिर्फ मौत मिलती है ,
 मौत -
 खाली बोतलों के पास
 खाली गिलास-सी ।”³⁴

जीवन और मृत्यु के अटूट संबंध को मानते हुए श्रीबीरेन भी लिखते हैं :-

“जीवन प्रतिस्पर्धा है मृत्यु का ;

जीवन

खेल है

निरसीम जल-राशि में

अथाह जल के भीतर ।”³⁵

“जीवन

साथ जाना है

हाथ में हाथ डाले मृत्यु के

छोड़े बिना थोड़ी देर के लिए भी ।”³⁶

“जीना
 खुशी से चिपटाना है मृत्यु को
 छाती से वीरतापूर्वक ;
 है मित्रता रखना मृत्यु के साथ ।”³⁷

मृत्यु हम सब का अंत है , इस सच्चाई से कोई भी इनकार नहीं कर सकता । पर जब मृत्यु का बुलावा आयेगा , तब हमारी क्या मनोदशा होगी ? इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ रहे हैं श्रीबीरिन भी :-

“एक दिन
 अचानक ही
 मैं
 तुम्हारी देहली पर
 खड़े हो कर ,
 आओ चलें
 खाना हो जाते हैं , कहता हुआ
 बुलाने आऊँ तो
 तुम
 क्या करोगे ?
 तत्काल ही
 चल सकोगे क्या
 मेरे साथ
 घर के सभी प्रियजनों को छोड़ ?
 एक दिन पुछा था मृत्यु ने ।
 मैं बस मुस्कराता ही रहा
 बगलें झाँकता हुआ
 यूँ ही ।”³⁸

‘मृत्यु’ शब्द के साथ डर की एक भावना छिपी रहती है। पर जीवन में कुछ ऐसे पल भी आते हैं कि मौत से अधिक जीने में डर लगने लगता है। कुछ ऐसा ही एहसास सर्वेश्वर की इस कविता में देखा जा सकता है :-

“कितना आसान है यह कह देना
कि मेरा कोई नहीं है
और कितना कठिन
कि मेरा कोई है।

.....

याद करने दो मुझे -
यह फिक्र मैंने कब सोचा था
उस समय जब मैं मरने से डरा था
या अब जब जीने से डर रहा हूँ।”³⁹

मनुष्य की हर इच्छा-अनिच्छा, क्रिया व प्रतिक्रिया का अंत है ‘मौत’ और हर ‘अंत’ एक नई शुरुआत का संकेत भी है। सर्वेश्वर के अनुसार:-

“जहाँ चलना मृत्यु है,
न चलना मृत्यु है,
अविश्वास मृत्यु है,
समर्पण मृत्यु है,
विद्रोह मृत्यु है,
प्यार मृत्यु है,
घृणा मृत्यु है,
जीना मृत्यु है,
न जीना मृत्यु है,
इस मृत नगर में
अंत में वहीं पहुँच जाता हूँ
जहाँ से चलना शुरू करता हूँ।”⁴⁰

इस मनोभाव को समेटते हुए वे पत्नी की मृत्यु पर लिखते हैं :-

“देह का धर्म है
सहना , फिर न रहना
क्या इतना ही था
तुम्हें मुझसे कहना ।
मैं जानता हूँ मुझे भी एक दिन मृत्यु
इसी तरह अकेला पाकर दबोच लेगी ।
इसी तरह निकलेगी एक निरूपाय कराह
इसी तरह कोई दूसरा कहेगा
हर मौत दिखाती हैं जीवन को नई राह ।”⁴¹

इस तरह हम देखते हैं कि सर्वेश्वर जीवन के कठोर अनुभवों से जूझते-जूझते जीवन की समृद्धि को धीरे-धीरे समझने लगे हैं। अर्थात् उनका दृष्टिकोण पहले से और भी विस्तृत हो गया है। कवि के शब्दों में :-

“इस समय रात उदास-सा सिर झुकाये बैठी
हुई है और समीप है एक मौन दीप , जो अपनी
अशक्त किरणों से उसके चिंता-अंकित
मस्तक पर लिख रहा है :
जावन का वैभव
प्यार किया जाना नहीं
प्यार करना है ,
पाना नहीं
देना है ,
सेवा से वंचित रहकर भी
सेवा करना है ,

अंधकार में आवश्यकता के समय
 दूसरों के लिए सहारे की सशक्त बाँह फैलाता है ,
 और संघर्ष के क्षणों में
 किसी दुर्बल आत्मा के लिए
 शक्ति का साधन बनाना है :
 जो इसे समझता है
 वह जीवन की समृद्धि को समझता है ।”⁴²

वे अन्यत्र भी लिखते हैं :-

“भेद कठिन कुट्टिम छत
 टपकी एक बूँद ,
 इस घोर वृष्टि से
 पूर्ण पृथक हो
 आयी मुझे भिगोने ,
 भरी आदम्य शक्ति , साहस से
 करुणा से , निर्बन्धमना
 मेरी सैया पर सोने ।
 वही शक्ति है
 मेरे दुर्बल जर्जर मन की ,
 वही शक्ति है
 दीवारों को अर्पित मेरे कायर क्षण की ।
 मैंने उसको सहज प्रबल आवेगों से अपनाया ,
 वह मेरी है ,
 मैं उसका हूँ ,
 बाहर का विशाल जल-प्लावन सदा पराया ।”⁴³

ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा कि सर्वेश्वर एक अनिर्मित पंथ के प्यारे हैं :-

“लीक पर वे चलें जिनके
चरण दुर्बल और हारे हैं
हमें तो जो हमारी यात्रा से बने
ऐसे अनिर्मित पंथ प्यारे हैं ।”⁴⁴

जीवन और मृत्यु के अंतर्सम्बंध की तह तक जाने की कोशिश में श्रीबीरिन प्रश्नों के कटघरे में खड़े दिखाई देते हैं :-

“आज
आए कई प्रश्न मेरे सामने ,
प्रश्न के बाद प्रश्न ;
प्रश्न-पंक्ति
पंक्ति ॥
सच क्या है ?
मृत्यु क्या है ?
जीवन क्या है ?
काल क्या है ?
सामने आ जाने पर समय
जगत के स्वामी , श्रीरामचन्द्र
बदल सकते थे समय का रूख ?
क्या मानव मृत्यु को जीत सका ?
सावित्री ने पराजित किया मृत्यु को अपने प्रेम से ;
क्या मृत्यु से बच सकते थे गौतम बुद्ध - नहीं बच सके ,
भाग खड़े हुए थे मृत्यु के भय से ।
कैसी मृत्यु थी वह !
हे मृत्यु !

हे काल !
 क्या तुम दोनों एक ही ?
 मृत्यु , हो तुम समाप्ति
 या
 संधि-स्थल ?”⁴⁵

लेकिन हर प्रश्न का उत्तर है , ‘मीन’ :-

“इतने दिनों से
 प्रश्न ही करता
 आया हूँ मैं ;
 तुम साधे रह मीन
 उत्तर देने के बदले ;
 चेहरे पर लिए
 आश्चर्य की प्रतिच्छाया ।”⁴⁶

यह तो निश्चित है कि हम सब को जाना है जरूर , मौत का बुलावा आने पर । फिर मौत
 के बाद - यही प्रश्न परेशान करता है श्रीबीरेन को :-

“जाना तो है जरूर
 बुलावा आने पर ;
 पर
 यहाँ से चल कर
 कहाँ रहेंगे
 कौन सी आश्रयशाला में ?

 जाकर फिर
 वापस आना होगा क्या
 यह भी अंधकारपूर्ण है ।”⁴⁷

मृत्यु की निश्चितता को मानते हुए हमें जीवन के यथार्थ और इस पंचभूत से बने शरीर को नहीं ठुकराना चाहिए । क्योंकि शरीर के बिना आत्मा और आत्मा के बिना शरीर अर्थहीन है । श्रीबीरेन इस सच्चाई को मानते हुए लिखते हैं :-

“कहकर , एक दिन जरूर हो जानी है , मृत्यु ,
 पंचभूत के इस शरीर से
 प्यार न करने को , मत कहो
 पृथ्वी के सुन्दर रूप को
 न देखने के लिए मत कहो
 कैसे छोड़ दूँ फरेब मानकर
 इनके साथ रहने से
 फूटता है अर्थ आत्मा से
 इससे निकलता है सत्य ,
 निकलता है वास्तविक रूप ।
 सिर्फ निष्प्राण शरीर से क्या होगा ?
 वैसे ही , आत्मा बिन शरीर के
 क्या कर सकती है जीवन में ?
 इसलिए
 पसन्द नहीं है मुझे
 निष्प्राण शरीर भी ,
 बिन शरीर आत्मा भी ;
 आत्मा और शरीर का संयोग
 चाहिए मुझे तो ।
 क्या है अंतस् ?
 क्या है बाह्य ?,
 यब बाह्य है कहाँ तक ?,

एक नहीं है क्या ये दोनों ?,
 इन दोनों के बन्धन से
 नहीं बन जाती क्या यह पूर्णता ?”⁴⁸

जीवन से प्राप्त अनुभवों को संजोते हुए श्रीबीरिन उस सम्पूर्णता की परिकल्पना करते हैं
 जहाँ आत्मा और परमात्मा का मिलन हो :-

“जीवन में जो देख-सुन पड़ रहा है , जो घट रहा है , उसमें
 घुस कर
 मार्ग बना
 घट्टा खोल
 प्रवेश करने पर
 जो दिखाई देता था जीवन छोटा
 हो जाता है लम्बा अचानक ।
 छोटा नहीं होता जीवन
 जीवन लम्बा होता है बहुत ।
 आगे बढ़ती है मेरी आत्मा
 आदि न हो जिसका ,
 अंत न हो जिसका
 गाँठें न हो जिसमें
 ऐसे समय में जब एकरूपता हो ;
 सीमाहीन
 विस्तृत और गहरी जल-राशि में
 आगे जाती है यूँ ही
 आगे जाती है ऐसे ही ;
 डूबने लगती है यूँ ही
 डूबने लगती है ऐसे ही ,
 लाल , हरा , काला रंग

सात रंगों वाला इन्द्रधनुष
मिल जाते हैं एक ही रंग में ।
दो भी , दो नहीं होते
हो जाते हैं एक ;
हो जाता है विलीन मैं 'मैं' में ।

और
फिर
कदम-कदम ,
निरंतर ॥”⁴⁹

वे और लिखते हैं :-

“विस्तृत ,
अति विस्तृत ,
निस्सीम जल-राशि ,
इस झिलमिलाती जल-राशि में
डानु-थंगोड़ हूँ मैं ।

.....

डुबकी लगाकर खेलता हूँ मैं ,
तैरकर खेलता हूँ मैं ,

डूबकर

हहुत देर बाद

ऊपर आ जाता हूँ अचानक

फिर

मैं ।

इस जल-राशि के ऊपर फिर ,

फैला आकाश ,

सीमाहीन नीला आकाश

इस आकाश में खेलता हूँ मैं ,
 उछलकर खेलता हूँ
 उड़कर खेलता हूँ
 इस आकाश में ।
 यूँ ही
 ऐसे ही
 घुल जाता हूँ मैं
 इस जल-राशि में
 ऐसे ही
 यूँ ही ;
 सोख लेता हूँ इस जल-राशि को
 मैं
 यूँ ही
 ऐसे ही ।
 इस आकाश में विलीन हो जाता हूँ मैं ;
 यह आकाश आकर विलीन हो जाता है मुझमें ;
 अलग हुए दो
 हो जाते हैं एक
 हो जाते हैं ।⁵⁰

(टिप्पणी :- १. बतख की प्रजाति का छोटा जल-पक्षी)

श्रीबीरेन की सम्पूर्ण वैयक्तिक मनोदशा उनकी इस लम्बी कविता में देखी जा सकती है ,
 जिसे उन्होंने Personal poem भी कहा है :-

“कितनी दूर आ गया हूँ
 चलते-चलते
 आधा गुजर गया है क्या ?
 इस रास्ते पर

धूल-मिट्टी से भरी
 इस गंदी पगडंडी पर
 बह रही दुर्गन्ध
 (पहले तो सुगन्धित लगती थी)
 हवा ने छेड़-छाड़ की
 मेरे शरीर से ;
 अचंभित हूँ
 उस समय मेरे शरीर में
 ताजगी तो नहीं थी
 ताजगी का ढोंग था
 उष्णता ढोने वाली
 हवा के स्पर्श से ।
 (यह भी पहले तो थोड़ी-थोड़ी ठंडी लगती थी)

सुदीर्घ
उत्सव

पिछले कदम चलना
 आदत नहीं मेरी
 कभी नहीं चलता
 पीछे कदम रखते हुए
 जाता हूँ मैं निरन्तर
 सामने की ओर देखते हुए
 नवोदित सूर्य की ऊँचाई और
 अपनी दृष्टि की ऊँचाई के
 समानान्तर
 सर उठाते हुए
 आगे की ओर दूर तक
 दृष्टि डालते हुए
 कदम बढ़ा रहा हूँ
 सामने की ओर ।

कौ पित्त

मेरी दुर्बल देह
 घसीट घसीट कर थक जाने पर भी
 गिरते-उठते
 उठते-गिरते
 करते हुए भी
 मन में कितनी शक्ति है
 कदम बढ़ाते समय ।

इस लम्बे सफर पर
 क्या मिला
 जिसे हाथ में ले सकता है
 अनुताप के सिवा ?
 यही है क्या , हे मानव
 इतना लम्बा सफर तय करने का परिणाम ?
 पहने हुए वस्त्र का
 पुराना हो जाना
 फटते जाना ;
 धूल से भरे रास्ते पर
 जाते रहने से
 पूरा शरीर धूल से नहाया
 पैदल दूर तक जाते रहने से
 छाले पड़े पाँव ,
 ठीक से उठा न सकना ,
 शरीर का थर थर
 काँपना
 कई दिनों से कंघी न करने से
 बिखरे बाल ।

ये सब क्या हो रहा है ?
 फिर भी एक दिन भी हताश नहीं हुआ
 दिशा बदलने को कभी नहीं सोचा ,
 नवोदित सूर्य के सम्मुख
 बढ़ रहा हूँ आगे ।
 इस सफर को छोड़ दूँ
 ऐसा कभी नहीं सोचा
 कदम बढ़ा रहा हूँ मैं
 आगे
 दुर्बल शरीर को लेकर
 पैरों के बल
 घसीट घसीट कर
 लुढ़कते -मचकते
 लड़खड़ाते हुए ।
 आज
 अचानक
 सुस्ती का अहसास होने लगा ,
 क्या मेरी दिशा एक ऐसी क्रूर दिशा की ओर
 मोड़ लें ?
 पृथ्वी की तेज गति को भी
 झट से रोक सकनेवाली ,
 सब को पंगु बनाने वाली
 दिशा की ओर ।
 अच्छे के लिए
 मैंने जो भी किया
 बेकार हो गया
 सब व्यर्थ , निरर्थक

हो गए ,
 ये क्या हो रहा है ?
 तो फिर
 सामने देखना छोड़कर
 पीछे मूड़कर लौटना है क्या ?
 कितने दिनों से पहने हुए कमीज-कुरते
 बोझ बन गये बहुत भारी
 ये सब उतार कर फेंक दूँ क्या
 मैं ?
 शाम हो गई है अब
 ढलते सूर्य को
 पश्चिमी पहाड़ का शिखर
 निगलनेवाला है ;
 हाथ-पैर फैलाकर
 सामने की घास पर
 बैठे रहें क्या
 अच्छाई-बुराई
 लाभ-हानि
 कुछ भी सोचे बगैर ।
 यह सूर्य इतना फीका
 क्यों है ?
 साँस फूलने लगी
 धड़कन तेज होने लगी
 जी घबराने लगा
 सोच सोच कर
 मन अशांत होने लगा ।⁵¹

कविता के माध्यम से सर्वेश्वर और श्रीबीरेन के दृष्टिकोणों की परखने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ तक समकालीन चेतना के संदर्भ में सर्वेश्वर और श्रीबीरेन की मनोदशा का प्रश्न है वहाँ समानताओं के साथ मौलिक भिन्नता भी है। जहाँ सर्वेश्वर, कम से कम काव्य में, अपनी मूल प्रखर चेतना से नहीं हटते, वहीं श्रीबीरेन के विचार और चिंतन में परिवर्तन दिखाई देता है। कभी भयानक रूप से क्रुद्ध मनोदशा से परिचालित श्रीबीरेन जीवन के उत्तरार्द्ध में मृत्यु पश्चात् के जीवन की कल्पना में खोते हुए प्रतीत होते हैं। वे बार-बार अपने युग के यथार्थ की चर्चा करते हुए भी मृत्यु पर वक्तव्य देने लगते हैं, व्यक्ति और मृत्यु का संबंध समझाने लगते हैं, मृत्यु से जीवन की अनिश्चितताएँ जोड़ने लगते हैं और किसी गम्भीर दार्शनिक की भाँति जीवन, मृत्यु और मनुष्य के अरूप संबंधों की व्याख्या करने लगते हैं। इस परिवर्तन के मूल में कौन से ठोस कारण हैं, इस विषय में कुछ भी कहना आसान नहीं है। श्रीबीरेन का व्यक्तित्व, जीवन, अपने समय से उत्पन्न निराशा या फिर अन्य कोई कारण इसके लिए जिम्मेदार है, यह अभी भी शोध का विषय है। स्वयं श्रीबीरेन इस विषय में अभी किसी निश्चित मत तक नहीं पहुँचे हैं। बार-बार पूछने पर भी उनका उत्तर होता है - 'मौन'केवल 'मौन'। साक्षात्कार लेने वाले या श्रीबीरेन को जानने वाला इस मौन की व्याख्या अपने ढंग से कर सकता है। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि श्रीबीरेन की मानसिकता में यह जो परिवर्तन दिखाई देता है, उससे यह अर्थ कदापि नहीं लगाना चाहिए कि वे प्रचलित समकालीन चेतना से दूर हो गये हैं या कविता के संबंध में उनका उत्तरदायित्व बदल गया है। इसका कारण यह है कि सामाजिक यथार्थ की उनकी कविताएँ आज भी बहुत धरादार और प्रभावशाली होती हैं। इस स्थिति में यही कहा जा सकता है कि श्रीबीरेन के भीतर अपने युग-यथार्थ के साथ-साथ अध्यात्म और मृत्यु के संबंध में भी एक अनुभूति ने जन्म ले लिया है। इस अनुभूति को श्रीबीरेन किसी भी तरह यथार्थ जीवन से हीन नहीं मानते।

संदर्भ

1. डॉ. कल्पना अग्रवाल ; सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : व्यक्ति और साहित्य , पृ. - 79
2. सर्वेश्वर ; कविताएँ-१ (कभी-कभी लगता है) , पृ.- 282
3. वही (सर्प-मुख के सम्मुख) , पृ. - 248
4. सर्वेश्वर ; कविताएँ-२ (इस मृत नगर में) , पृ.- 45 , 48
5. वही (पूर्णिमा-कथा) , पृ. - 33
6. सर्वेश्वर ; खूंटियों पर टँगे लोग (अब कुछ ठीक नहीं) , पृ. -67- 68
7. सर्वेश्वर ; कविताएँ-१ (कभी-कभी लगता है) , पृ.- 282
8. श्रीबीरेन ; तोल्लबा शादुगी वाखल (चाफदबा लाइगी येन) , पृ. -26 -27
9. सर्वेश्वर ; कविताएँ-१ (छीनने आये हैं वे) , पृ.- 106
10. सर्वेश्वर ; कविताएँ-२ (एक आत्मीय की प्रतीक्षा) , पृ. - 137 - 138
11. सर्वेश्वर ; कविताएँ -१ (आधे-रास्ते) , पृ. - 198
12. श्रीबीरेन ; मपाल नाइदबसिदा ऐ (ऐ अमसुङ् पुन्सि-१) , पृ. - 85 - 86
13. वही (मसिबु मङ्लने ?) , पृ.-109
14. वही (नुमित् ताद्विडैसिदा) , पृ. -50 - 52
15. वही (मैना वाय , ताङ्ना शम) , पृ. -33 - 34
16. वही (शक्तम) , पृ. -60- 61
17. सर्वेश्वर ; कविताएँ -२ (वसंत के नाम एक खुल्ला पत्र) , पृ. -164
18. सर्वेश्वर ; कविताएँ -१ (आज पहली बार) , पृ. - 60
19. सर्वेश्वर ; कविताएँ -२ (प्रर्थना -१) , पृ. - 130
20. सर्वेश्वर ; खूंटियों पर टँगे लोग (पहाड़ों को मेरे ऊपर गिरने दो) , पृ. - 78 - 79 .
21. सर्वेश्वर ; कविताएँ-१ (मैं नहीं चाहता) , पृ. - 255
22. सर्वेश्वर ; कुआनो नदी (कुआनो नदी के पार) , पृ. - 28 -29
23. वही (युद्ध के नाम पर) , पृ. - 84 - 85
24. सर्वेश्वर ; कविताएँ -२ (धूल) , पृ. - 154
25. सर्वेश्वर ; कोई मेरे साथ चले (कोई मेरे साथ चले) , पृ. - 39

26. वही (प्यार) , पृ. - 17
27. वही (मेरा प्यार) , पृ. -35
28. श्रीबीरेन ; सनागी कैराक (मोत्लबा नाला) , पृ. -65 - 66
29. श्रीबीरेन ; मसिना इम्फालगी वारीनि (पारा अमखक्) , पृ - 58
30. वही (मसिना इम्फालगी वारीनि) , पृ. - 20
31. श्रीबीरेन ; मपाल नाइदबसिदा ऐ (नुमित् ताद्विडैसिदा) , पृ. - 47 - 48
32. सर्वेश्वर ; कविताएँ - १ (गीत) , पृ. - 237
33. सर्वेश्वर ; जंगल का दर्द (आश्रय) , पृ. - 69
34. सर्वेश्वर ; कविताएँ-२ (धीरे-धीरे) , पृ.- 88, 99
35. श्रीबीरेन ; मपाल नाइदबसिदा ऐ (अहान्बा कविता) , पृ - 69
36. वही ; (अनिशुबा कविता) , पृ - 70 , 71
37. वही ; (अहुमशुबा कविता) , पृ - 71
38. श्रीबीरेन ; सनागी कैराक (मोमोन्तमक नोकइ ऐना) , पृ - 74
39. सर्वेश्वर ; कुआनो नदी (शरणार्थी) , पृ - 73
40. सर्वेश्वर ; कुआनो नदी (शरणार्थी) , पृ - 73
41. सर्वेश्वर ; कविताएँ -२ (पत्नी की मृत्यु पर) , पृ. - 127
42. सर्वेश्वर ; कविताएँ -१ (नये वर्ष पर) , पृ - 88
43. सर्वेश्वर ; कविताएँ-२ (एक बूँद) , पृ - 35
44. वही (लीक पर वे चलें) , पृ - 39
45. श्रीबीरेन ; मपाल नाइदबसिदा ऐ (ऐखोयनबु करि डम्बगे , करि डम्बगे) , पृ - 37 - 38
46. श्रीबीरेन ; सनागी कैराक (उदबा अमा) , पृ. - 57
47. वही (चत्पबुदि चत्लनि शोयदना) , पृ - 80 - 81
48. श्रीबीरेन ; मपाल नाइदबसिदा ऐ (वाहड्) , पृ - 58 - 59
49. वही (मैना वाय , ताड्ना शम) , पृ. - 35 - 36
50. वही ; (मपाल नाइदबसिदा ऐ) , पृ. - 11 -12
51. श्रीबीरेन ; सनागी कैराक (ऐगी मायओन) , पृ - 105 - 109